स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः

भागवत-पत्रिका

नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥

अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्माको आनन्द प्रदायक ।
भक्ति अधोक्षजकी अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥

सब धर्मोंका श्रेष्ठ रीतिसे पालन करते जीव निरन्तर ।
किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो श्रम व्यर्थ सभी केवल बंधनकर ॥

वर्ष १६ | गौराब्द ४८५, मास—विष्णु २, वार—वासुदेव, रविवार, २९ फाल्गुन, सम्वत् २०२७, १४ मार्च १९७१ | संख्या १०

मार्च १९७१

श्रीमद्भागवतीय श्रीकृष्णस्तोत्राणि

नागपत्नीनां श्रीकृष्णस्तोत्रम्

(श्रीमद्भागवत १०।१६।३३—५३)

न्याय्यो हि दण्डः कृतकिल्बिषेऽस्मिंस्तवावतारः खलनिग्रहाय ।
रिपोः सुतानामपि तुल्यदृष्टेर्धत्से दमं फलमेवानुशंसन् ॥३३॥

नागपत्नियोंने कहा—हे देव ! दुष्टदमनके लिए ही आप भूतलमें अवतीर्ण हुए हैं, अतएव हमारे पापाचारी पतिके लिए यह दण्ड उचित ही हुआ है । आप शत्रु और पुत्र दोनों के प्रति ही समदर्शी हैं एवं उनके भविष्य-मंगलकी ओर देखते हुए उन्हें दण्ड प्रदान किया करते हैं ॥३३॥

अनुग्रहोऽयं भवतः कृतो हि नो दण्डोऽसतां ते खलु कल्मषापहः ।
यद् द्वन्द्वशूकत्वममुष्य देहिनः क्रोधोऽपि तेऽनुग्रह एव सम्मतः ॥३४॥

आपका दण्ड निश्चित रूपसे पापियोंकी पापराशिका नाश कर देता है, अतएव आपने दण्ड रूपसे हमारे प्रति अनुग्रह ही प्रकाश किया है । विशेषकर हमारे इस पतिने जिस पापसे सर्पत्व प्राप्त किया है, उस पापका नाश करनेसे हम लोग आपके क्रोध को भी अनुग्रह ही समझ पा रहे हैं ॥३४॥

तपः सुतप्तं किमनेन पूर्वं निरस्तमानेन च मानदेन ।
धर्मोऽथ वा सर्वजनानुकम्पया यतो भवांस्तुष्यति सर्वजीवः ॥३५॥

सम्मान-प्रदान आदि द्वारा जीवोंको सन्तुष्ट करनेसे आप सन्तुष्ट होते हैं, अतएव आप सर्वजीवस्वरूप हैं । हमारे पतिने पूर्व जन्ममें अमानी और मानद होकर कोई तपस्या की थी अथवा सभी जीवोंकी हितबुद्धिसे कोई धर्म-आचरण किया है—जिससे आप इसके प्रति प्रसन्न हुए हैं ॥३५॥

कस्यानुभावोऽस्य न देव विद्महे तवाङ्घ्रिरेणुस्पर्शाधिकारः ।
यद्वाञ्छया श्रीर्ललनाऽऽचरत् तपो विहाय कामान् सुचिरं धृतव्रता ॥३६॥

हे देव ! आपके चरणोंकी जिस रेणुको प्राप्त करनेके लिए ललना श्रीदेवी (श्रीलक्ष्मी जी) ने समस्त प्रकारके भोगोंका परित्याग कर चिरकाल तक वृतशीला होकर तपस्या की थी, यह कालिय किस पुण्य-प्रभावसे उस चरण-रेणुको प्राप्त करनेका अधिकारी हुआ, यह हम समझ नहीं पा रही हैं ॥३६॥

न नाकपृष्ठं न च सार्वभौमं न पारमेष्ठ्यं न रसाधिपत्यम् ।
न योगसिद्धिरपुनर्भवं वा वाञ्छन्ति यत्पादरजःप्रपन्नाः ॥३७॥

आपके पादरजके आश्रित व्यक्ति स्वर्गलोक, पृथ्वीका एकछत्र राज्य या सार्वभौमपद, ब्रह्माकी पदवी, योगसिद्धि, अथवा अपुनर्भवरूप सायुज्य मोक्ष—आदि कुछ भी नहीं चाहते ॥३७॥

तदेष नाथाप दुरापमन्यैस्तमोजनिः क्रोधवशोऽप्यहीशः ।
संसारचक्रे भ्रमतः शरीरिणो यदिच्छतः स्याद् विभवः समक्षः ॥३८॥

हे प्रभो ! जिस पदरजकी वांछा कर संसार चक्रमें भ्रमणशील व्यक्ति भी उत्कृष्ट फल प्राप्त करते हैं, क्रोधपरवश तमोगुणके वशीभूत इस सर्पराजने ब्रह्मादि तथा दूसरोंके लिए भी दुर्लभ आपके उस पदरजको प्राप्त कर लिया है ॥३८॥

(क्रमशः)

श्रीगुरु-तत्व विचार

वन्दे गुरूनीशभक्तानीशमीशावतारकान् ।
तत्प्रकाशांश्च तच्छक्तीः कृष्णचैतन्यसंज्ञकम् ॥

अर्थात् दीक्षा एवं शिक्षा गुरुद्वय, श्रीवासादि ईशभक्तगण, श्रीअद्वैताचार्य आदि ईशावतार, श्रीनित्यानन्द प्रभु आदि उनके प्रकाश-तत्व एवं श्रीगदाधरादि ईशशक्ति--इन पंचतत्वात्मक ईशस्वरूप महाप्रभु श्रीकृष्ण-चैतन्य नामक परमतत्वकी मैं वन्दना करता हूँ ।

मैं गुरुवर्गको प्रणाम करता हूँ जो तीन प्रकारके हैं—वर्त्मप्रदर्शक, दीक्षादाता और शिक्षा–गुरु। श्रीगुरुका प्रणाम-मन्त्र इस प्रकार है—

अखण्डमण्डलाकारं व्याप्त येन चराचरम् ।
तत्पदं प्रदर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ।।

अर्थात् अखण्ड स्वरूप एवं आकारसे युक्त तथा जिनसे चराचर विश्व व्याप्त है, ऐसे परब्रह्मस्वरूप भगवानके चरणारविन्दोंका दर्शन जिन्होंने कराया है, ऐसे उन श्रीगुरुदेव को नमस्कार करता हूँ ।

'तत्पदं दर्शितं येन' अर्थात् जिन्होंने कृष्ण-प्राप्तिका पथ प्रदर्शन किया है। 'मैं कहाँ जाऊँ ? क्यों जाऊँ ? जानेके पथमें कोई विघ्न-बाधा है या नहीं ?'—इत्यादि जो दिखलाते हैं और महान्तस्वरूप गुरुदेवका संधान जो बतला देते हैं उन्हें वर्त्मप्रदर्शक गुरु कहा जा सकता है। महान्त-गुरु या जगद्-गुरु और एकगुरुवाद में क्यापार्थक्य है, उसकी आलोचना आवश्यक है। एकमात्र गुरुका जो निर्देश देते हैं, वे वर्त्मप्रदर्शक हैं। श्रीबिल्व-मङ्गलने कहा है—

चिन्तामणिर्जयति सोमगिरिर्गुरुर्मे
शिक्षागुरुश्च भगवान् शिखिपिञ्छमौलिः ।
यत्पादकल्पतरुपल्लवशेखरेषु
लीलास्वयंवररसं लभते जयश्रीः ॥

अर्थात् संकल्पानुसारसे सर्वाभीष्टप्रदाता गुरुरूपा चिन्तामणि जययुक्त हो। चिन्तामणि कृपालब्ध मुझे जिन्होंने वैराग्य विवेकादिकी शिक्षा दी है, वे सोमगिरि नामक गुरु जययुक्त हों। जिन श्रीकृष्णके पदकल्पतरुके नखाग्रमें जयश्रीरूपा राधाजी लीला-स्वयंवर रस अर्थात् सेवारस या स्वच्छन्दरस प्राप्त करती हैं. वे शिखिपिञ्छमौलि (मयूर पुच्छ मुकुटधारी) श्रीकृष्ण मेरे शिक्षाचार्य स्वरूप हैं; वे जययुक्त हों।

श्रीबिल्वमंगल ठाकुरके वर्त्मप्रदर्शक गुरु चिन्तामणिने उनसे यह कहा—आप एक घृणित जीवके प्यारको पाने के लिए जब इतने अधिक आसक्त हो पड़े हैं, सामान्य क्षणिक सुखके लिए इतना प्रबल उद्यम प्रकाश कर रहे हैं और अपने जीवनके प्रति भी लक्ष्य नहीं कर रहे हैं, तब ऐसे उद्यम और

आसक्तिको एकमात्र आश्रयदाता और नित्य सुखबोधतनु परमवस्तु श्रीकृष्णके पादपद्मोंकी प्राप्तिके लिए यदि थोड़ा भी प्रयोग करते तो ऐसे तुच्छ विषय पर आप कदापि दृष्टिपात नहीं करते। आप क्षुद्र वस्तुके लिए कोई चेष्टा न कर श्रीहरिके पादपद्मोंका आश्रय ग्रहण करें। आपमें प्रचुर रूपमें उद्यम और चेष्टा वर्त्तमान है।"

शक्ति और उद्यमको वास्तव परमार्थ-तत्त्वके सन्धान-लाभके लिए ही लगाना उचित है। बहिर्मुख विचारके अनुसार हरि-भजनमें जीवोंके लिए अल्प लाभकी मात्रा प्रतीत होती है। इसलिए जागतिक विषयी लोग अनित्य सुखकर वस्तु लाभके लिए चेष्टा कर वृथा ही समय नष्ट करते हैं। यदि उनकी बुद्धि ठीक होती, तो वे इतने क्षुद्र वस्तुओंके लिए व्यस्त न होकर परमवस्तुको पानेके लिए यत्न करते। इसलिए हमारी प्रार्थना है कि मनुष्य लोग साधुमुखसे हरिकथा श्रवण करें। श्रवण द्वारा सर्व प्रकारसे मंगल ही होगा। उस समय मनुष्य यह समझ पायेंगे कि इस जगतकी बातोंका मूल्य अल्प है और तुच्छातितुच्छ है। किन्तु यदि वे अपनी मृत्युके पहले अपने परम मङ्गलकी बात और सर्वोन्नत कथा श्रवण न करें, तो उनको कोई सुविधा नहीं प्राप्त हुई।

भाग्यवशतः बिल्वमंगलजीने यह शिक्षा चिन्तामणिसे पायी थी। बिल्वमङ्गल ठाकुर का असत्सङ्गमें कैसा मोह उपस्थित हुआ था! प्रवाद यह है कि पिता का श्राद्धकार्य कर भोज्य द्रव्य लेकर एकाकी गभीर रात्रिमें भयङ्कर तूफान और जलके बीचमें वे वेश्या-लयमें उपस्थित हुए थे। शवदेहको नौका समझकर उसका अवलम्बन किये थे। वेश्याके घरका द्वार बन्द होनेके कारण प्राचीर लंघन करते समय साँपको रस्सी समझकर उसे उन्होंने ग्रहण किया था। उसके पश्चात् क्लान्त होकर वेश्याके निकट उपस्थित हुए थे। मोहके वशवर्ती होकर उनकी कैसी अद्भुत तन्मयता उपस्थित हुई थी!

वर्त्मप्रदर्शक गुरुके निकट हमारे चरम गन्तव्य स्थानका अनुसन्धान लेना होगा। शिष्यके लिए योग्यतानुसार सेवा करने एवं सेवा-विषयमें श्रवण करनेकी आवश्यकता है। अत्यन्त आग्रहकारीका उपार्जन अधिक होना चाहिए। दुष्प्राप्य वस्तुको पानेके लिए अधिक मूल्य देना पड़ता है। वर्त्मप्रदर्शक गुरुके निकट वास्तव मङ्गलकी बात जिज्ञासा करना आवश्यक है। इस जगतकी बातें हम जानते हैं, किन्तु जिस जगतकी बातें हम नहीं जानते, उस जगतकी बातें उस जगतके व्यक्तियोंसे जानना आवश्यक है। वे सभी बातें यदि इस जगतमें होतीं, तो हो सकता था कि हम उन्हें चिन्ता कर स्थिर कर सकते थे। किन्तु मनुष्यकी चिन्ता कितनी है? मनुष्य भ्रम, प्रमाद, विप्रलिप्सा और करणा-पाटव—इन चार दोषों से दूषित है। भ्रम—एक समझने के बदले दूसरा समझना। प्रमाद—अनवधानता। विप्रलिप्सा—वञ्चना करनेकी इच्छा। करणापाटव—चक्षुः-कर्णादि इन्द्रियोंकी अपटुता। दृष्टान्त—जिस प्रकार दृष्टि शक्ति रहने पर भी हम लोग अत्यन्त सूक्ष्म और अत्यन्त बृहद्वस्तुका दर्शन नहीं कर पाते। हम लोग शैशवकालमें प्राप्त-वयसकी सुविधा या असुविधा जान नहीं सकते। बद्धावस्थामें हमारा व्यक्तिगत अधि-

कार बहुत थोड़ा है । मंगलार्थी व्यक्तिके लिए हितकामी और अभिज्ञ व्यक्तिके निकट श्रवण करना आवश्यक है । कहाँ, किस प्रकार महान्त गुरु मिल सकते हैं,यह बात वर्त्मप्रदर्शक गुरुसे सुनना आवश्यक है । अनभिज्ञ व्यक्ति अभिज्ञ व्यक्ति द्वारा लाभवान होंगे । पथमें कहाँ बाधाएँ और गर्त्तादि हैं वह पथके अभिज्ञ व्यक्ति के निकट जानना होगा । Expert (निपुण व्यक्ति) की अभिज्ञता ग्रहण न कर अपने विचारानुसार कार्य करनेसे असुविधा होना अनिवार्य है । अपने विचारसे अनभिज्ञ व्यक्तिको अभिज्ञ समझनेसे ठीक नहीं होगा । वेदोंमें कहा गया है—

तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् ।
समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् ॥

अर्थात् उस भगवद्वस्तुके विज्ञान (प्रेम-भक्तिके सहित ज्ञान) को प्राप्त करनेके लिए वे समिधहस्तयुक्त (श्रद्धायुक्त) होकर वेदता-त्पर्यज्ञ और कृष्णतत्त्वविद् सद्गुरुके समीपमें कायमनोवाक्य द्वारा गमन करेंगे ।

गुरुके दो लक्षण हैं—वे श्रोत्रिय और ब्रह्मनिष्ठ हैं । निष्ठाकी परिभाषा—'अविक्षेपेण सातत्यम्'; जो परब्रह्ममें सतत युक्त हैं, वे ही ब्रह्मनिष्ठ हैं । कोई यदि मुझे उद्धार कर नहीं सकते, तो वे सद्गुरु नहीं हो सकते । जो व्यक्ति शिष्यको उद्धार करेंगे, ऐसा कह-कर आश्वासन देकर भी उसे बीच रास्तेमें छोड़कर पलायन करते हैं, वे गुरुब्रुव हैं (आत्मानं गुरु ब्रवीति यः सः गुरुब्रुवः) ।

मैं यदि गुरुका शासन न ग्रहण करूँ, तो मेरा मङ्गल न होगा : जो व्यक्ति अपनेको गुरु या श्रेष्ठ समझता है, वह गुरुब्रुव है एवं नरकमें गमन करता है ।

यो व्यक्ति न्यायरहितमन्यायेन शृणोति यः ।
तावुभौ नरकं घोरं व्रजतः कालमक्षयम् ॥

गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्यकार्यमजानतः ।
उत्पथप्रतिपन्नस्य परित्यागो विधीयते ॥

अर्थात् जो व्यक्ति आचार्यवेशसे अन्याय अर्थात् सात्वत शास्त्रविरोधी बातका कीर्त्तन करते हैं एवं शिष्य रूपसे अन्याय रूपसे जो व्यक्ति उसे सुनते हैं, वे दोनों ही अनन्तकालके लिए घोर नरकमें गमन करते हैं । भोग्यविषयलिप्त, कर्त्तव्याकर्त्तव्य-विवेकहीन मूढ़ एवं शुद्धभक्तिको छोड़कर इतर पथानुगामी व्यक्ति नाम-मात्र गुरु होने पर भी उनका परित्याग करना ही विधि है ।

वर्त्मप्रदर्शक गुरु भी महान्त गुरु हो सकते हैं । Semite (देवताविशेषके पूजकोंके) अनुसार एकगुरुवाद ही ठीक है । वे महान्त गुरुको स्वीकार नहीं करते । गुरुके सम्बन्धमें श्वेताश्वतर उपनिषद् (६।२३) में ऐसा कहा गया है—

यस्य देवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ॥

जिनका श्रीभगवानमें पराभक्ति वर्त्तमान है एवं जिस प्रकार भगवान्में भक्ति है, वैसी ही श्रीगुरुदेव में भी शुद्ध भक्ति वर्त्त-मान है, उन महात्माके सम्बन्धमें ये विषय अर्थात् श्रुतिके मर्मार्थ उनके हृदयमें प्रकाशित होते हैं । श्रीमद्भागवतमें कहा गया है—

आचार्यं मां विजानीयान्नावमन्येत कर्हिचित् ।
न मर्त्यबुद्ध्यासूयेत सर्वदेवमयो गुरुः ॥

अर्थात् हे उद्धव ! गुरुदेवको मेरा ही स्वरूप जानना। गुरुमें मर्त्यबुद्धि कर उनकी अवज्ञा नहीं करना। वे सर्वदेवमय हैं।

गुरुदेवको प्राप्यजातीय अर्थात् उपास्य वस्तु न समझनेसे हमारी उनके चरणोंमें मर्त्यबुद्धि आ जायेगी। इसलिए श्रीमद्भागवतका कहना है—'आचार्यं मां विजानीयात्'। न असूयेत –अर्थात् मत्सरता या हिंसा नहीं करेंगे। गुरुसेवा ही जीवोंका प्रधान कर्त्तव्य है। यदि मैं गुरुसेवा नहीं करूँ, यदि उनकी अवज्ञा करूँ, तो चिर दिनके लिए मेरा अमंगल होगा। आरोहपन्थी व्यक्ति अति उच्च स्थानसे पतित होते है। आत्मप्रभव या जिनसे हमारी उत्पत्ति हुई है। उन परमप्रभु की अवज्ञा करनेसे घोर अपराध होता है। श्रीअद्वैताचार्य भी गुरुका कार्य करते हैं। यदि "वे विष्णु नहीं हैं, वे उपादानमात्र हैं, या वे मनुष्य मात्र हैं"—ऐसा माननेसे भयङ्कर अपराध होगा। वे विश्वके उपादान कारण विष्णु हैं। "वे जीवमात्र हैं, वे भक्तभाव अङ्गीकारकारी हैं"–ऐसा सोचनेसे उनके प्रति अवज्ञाके कारण घोर अपराध होगा। वे भक्ति के प्रवर्त्तक हैं एवं स्वयं श्रीगुरुपादाश्रय होकर भी भक्तिशिक्षक उपदेष्टा आचार्य हैं। वे महाविष्णुके अवतार हैं। जगत सृष्टि higher office (बड़ा कार्य) नहीं है। वे predominating entity (शक्तिमान) हैं, predominated (शक्ति) नहीं हैं। वे जीवोंके भक्तिलाभके उपादान कारण हैं। उनकी ऐसी वन्दना की गई है—

अद्वैतं हरिणाद्वैतादाचार्यं भक्तिशंसनात्।
भक्तावतारमीशं तमद्वैताचार्यमाश्रये ॥

चेतनराज्यमें अग्रसर होनेके लिए भक्ति ही उपादान है। श्रीअद्वैत प्रभुको मायाका उपादान समझना अपराध है। घटनिर्माणमें कुम्भकार और मिट्टी-कुलाल-चक्र आदि जिस प्रकार निमित्त और उपादान हैं, उसी प्रकार समस्त कार्योंके कर्त्ता श्रीचैतन्यदेव हैं। श्रीअद्वैताचार्य उपादान हैं। वे श्रीविष्णुसेवा के उपादान गंगाजल और तुलसी-पत्र एवं कृष्णनाम हुँकारसे श्रीकृष्णको इस जगत्में अवतरण कराये थे। उपादान–कारणमें मर्त्य बुद्धि करना अन्याय है। वे Subject (आश्रय) के Object (विषय) हैं। वे भक्ति–शिक्षक आचार्य हैं।

तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्।
समित्पाणि श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् ॥

शिष्यसे लिए, आचार्यकी कृपा पानेके लिए eligible (योग्य) होना आवश्यक है। 'समित्पाणिः' होने की आवश्यकता है। समिध् संग्रह कर आचार्यके निकट उपस्थित होनेपर वे उपनयन प्रदान करेंगे। 'त्वामहं उप नेष्ये' 'उप' अर्थात् वेदके समीपमें। ब्राह्मण बटु में intelligence (बुद्धिमत्ता) और ingredients (आवश्यक अङ्गों) के अभाव होने पर उपनयन नहीं दिया जायगा। शिष्यके लिए सद्गुरुके पादपद्मका आश्रय पानेके लिए ऐकान्तिक चेष्टाकी योग्यता कही जाती है। है। 'तद्विज्ञानार्थं' अर्थात् 'तत्' जो पूर्ण वस्तु है, उसका विशेषज्ञान प्राप्त करनेके लिए। अभिगच्छेत् अर्थात् गुरुपादपद्मके निकट सर्वतोभावेन गमन करेंगे। गुरुगृहसे लौटकर आनेके लिए वहाँ गमन न करेंगे। शास्त्रोंमें ३६ वर्ष गुरुगृहमें वास करनेके पश्चात् गृहमें समावर्तनकी विधि कही गई है। ऋक्, साम, एवं यजुः—प्रत्येक वेद १२ वर्ष अध्ययन करना होगा—ऐसा सोचकर ही यह व्यवस्था है। समावर्त्तनकी बुद्धि रहने पर पूर्णज्ञान प्राप्त

नहीं किया जा सकता। जो लोग पूर्णज्ञान प्राप्त करते हैं, उन्हें घरमें लौटकर नहीं आना पड़ता। जो लोग पूर्णज्ञान प्राप्त करनेके लिए उत्कण्ठित हैं, उनसे ही 'अभिगच्छेत्' वाक्य पालित होता है। ब्रह्मचारी दो प्रकारके हैं—नैष्ठिक एवं उपकुर्वाण। नैष्ठिक लोग मृत्यु तक हरिभजन करते हैं। उपकुर्वाण ब्रह्मचारी भविष्यत्में गृहस्थोंकी संख्या-वृद्धिके लिए समावर्त्तन करते हैं।

हम लोग चैत्यगुरु एवं महान्तगुरुके सम्बन्धमें कुछ आलोचना करेंगे। चैत्यगुरु Pure unalloyed conscience (शुद्ध अमिश्रित अन्तःकरण) हैं। हम लोग वर्त्म-प्रदर्शक गुरुसे परामर्श लेते हैं। चैत्यगुरुके द्वारा उसका approvement (अनुमोदन) न होने पर उसे हम reject (अस्वीकार) करते हैं। चैत्यगुरु कृपा न करनेसे मंगल नहीं होता। भगवान् कृपा करनेसे ही मनुष्य निर्णय कर सकता है अन्यथा अपनी चेष्टा करने से वंचित होता है।

महान्तगुरु दो प्रकारके हैं—शिक्षा-गुरु एवं दीक्षा-गुरु। दिव्य ज्ञान पानेके लिए दीक्षा-प्राप्तिका प्रयोजन है। 'विद्' धातु ज्ञान प्राप्त करनेके अर्थमें व्यवहार किया गया है। वेद ज्ञान प्राप्त करनेसे हमें वास्तव वस्तुका साक्षात्कार प्राप्त होता है। दीक्षा किसे कहते हैं, यह इस श्लोकमें वर्णित है—

दिव्यं ज्ञानं यतो दद्यात्
कुर्यात् पापस्य संक्षयम्।
तस्मात्दीक्षेति सा प्रोक्ता
देशिकैस्तत्त्वकोविदैः ॥

अर्थात् जो ज्ञान वर्त्तमानमें हममें नहीं है, हमें वही दिव्य ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। जगतकी विद्यासे प्राप्त ज्ञान इस जगतके विषयोंकी आलोचनाका फलमात्र है। श्रौतपंथमें ही दिव्यज्ञान या हमारे विचारसे उन्नत ज्ञान मिलेगा—ऐसा सोचने पर मंगल होगा। कर्मी लोग कहते हैं—विद्या, धन एवं शारीरिक शक्ति प्राप्त करने पर ही हमारी सुविधा होगी। चार्वाक् कहते हैं—'यावज्जीवेत् सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्।' किसीके मतानुसार उनके नामके विश्लेषणसे 'चारु-वाक्' ऐसा समझने पर भी उनका मतवाद संपूर्ण रूपसे नास्तिक्यपूर्ण है। Epicurus का मत भी प्रायः इसी प्रकार है—Eat drink and be merry, for to-morrow you may die (खाओ, पीओ और सुख-पूर्वक रहो, क्योंकि कल तुम्हारी मृत्यु संभव है)।

हम जितने भी ज्ञानी होनेकी दांभिकता क्यों न करे, भूत और भविष्यत् नहीं जानते। हमारी उन्नतिके विचारमें भ्रान्ति आ जाती है। पार्थिव उन्नतिके विचारमें असद्गुरु-प्राप्ति होती है। शिष्यको जागतिक उन्नतिके परामर्श देने पर परामर्शदाता शूद्र हो जाते हैं। पिता-माता, पुरोहित आदि जागतिक गुरु हमारी आर्थिक उन्नति एवं अपनी स्वार्थसिद्धि की बात कहते हैं। हम इस जगतमें कितने दिन रहेंगे? नित्यकालके नित्य जीवनकी सुविधा का परामर्श कौन देगा? आनेवाले समयकी बात आलोचना करना आवश्यक है।

चैतन्यचन्द्रेर दया करह विचार।
विचार करिले चित्ते पावे चमत्कार॥

श्रीचैतन्य महाप्रभुने कोई जागतिक या ऐहिक प्रयोजन की बात नहीं कही। उन्होंने

Altruism (परोपकार) सिद्धान्तका बहुमानन नहीं किया । मनुष्यमात्र ही परोपकारी (Altruist) है, इसमें क्या सन्देह है ? इसे दुबारा कहनेकी क्या आवश्यकता है ?

जो व्यक्ति सभी की मंगल-कामना नहीं करते, वे व्यक्ति मनुष्यपद वाच्य नहीं हैं । श्रीचैतन्यदेवके पादपद्मोंको छोड़कर वास्तव एवं उन्नत अवस्थानकी बात इस जगतमें किसीने भी नहीं कही । श्रीचैतन्यदेवने उपदेश दिया है—'हे जीव ! तुम 'हरिभजन करो ।' उससे लोगोंने जाना कि वे स्वयं श्रीहरि हैं । 'जगत्के सभीका नित्यमंगल हो' – ऐसी दया की बात ऐसी मंगलमयी बात अखण्डकाल ढूँढ़ने पर भी नहीं मिलेगी । अन्य लोगोंकी बातोंसे उसकी तुलना नहीं होगी । चैतन्यदेव की कथा कीर्तनकारी भक्त ही गुरु होंगे । योगी गुरु, ज्ञानी गुरु, कर्मी गुरु—इनका विचार ऐहिक मात्र है । चिन्मात्र और अचिन्मात्रवादी विचारमें जिस प्रकार भूल हुआ है, उसे साधारण बुद्धिमान् व्यक्ति भी समझ सकते हैं । ये सभी ही Atheistic Group के (नास्तिक दलके) व्यक्ति हैं । कृष्णभक्त ही सर्वश्रेष्ठ Highest intellsgentsia (सर्वोत्तम बुद्धिमान) हैं । नारायणके भक्त उसके नीचेके स्तरमें अवस्थित हैं ।

मृत्यु समयमें हमारी क्या चिन्ता होगी ? "यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी ।" हम जिस चिन्तास्तोत्रको लेकर मर जायेंगे, उसीके अनुरूप जन्मग्रहण समयमें जीवन मिलेगा । Materialist (भौतिकवादी) की धारणा है कि मृत्युके पश्चात् कुछ भी नहीं है एवं जड़वस्तु से ही जीवका जन्म है । Altruism का मूल बात है कि 'दूसरोंका जितना अधिक उपकार करूँगा, मैं उतना अधिक उपकार पाऊँगा ।' श्रीगुरुदेव कहते हैं कि 'हम 'Designing enterprise' अर्थात् वित्तैषणा, पुत्रैषणा, विद्यैषणा आदि एषणा या वासनाके वशवर्ती होनेसे हमारा आत्मकल्याण न होगा । पुण्य करके मरनेपर धनी, पण्डित, या स्वास्थ्यवान् व्यक्तिके घरमें जन्म हो सकता है । मनुष्य होकर पुनः मनुष्यके गृहमें जन्म ले सकते हैं । किन्तु यथार्थ मङ्गल नहीं भी हो सकता है । जागतिक पुरोहित एवं गुरु ऐहिक और पारत्रिक मङ्गलके उपदेशक मात्र हैं । बद्धजीवकी वासना इस जगतकी उन्नति एवं मङ्गलकी ओर ही सर्वदा चेष्टित है ।

पाठशालाके गुरु, मेरी विभिन्न जागतिक विद्या-शिक्षाओं के गुरु—सभी ही जागतिक गुरु हैं । पिता-माताका परामर्श लेने पर भी मृत्यु प्राप्त होगी । हरिभजनकारीको छोड़कर दूसरेको परामर्शदाता बनानेसे अत्यन्त असुविधा ही होगी । हम जिस किसीको गुरुकी न कहेंगे । पितामाता हरिभजन करने पर ही गुरु हो सकते हैं । जो हमारा नित्यमंगल नहीं करा सकते, वे गुरु नहीं हैं ।

गुरुर्न स स्यात् स्वजनो न स स्यात्
पिता स न स्याज्जननी न सा स्यात् ।
दैवं न तत् स्यान्न पतिश्च न स्यात्
न मोचयेत् यः समुपेत मृत्युम् ॥

(भा० ५।५।१८)

भक्तिपथके उपदेश द्वारा जो समुपस्थित मृत्युरूप संसारसे मोचन नहीं करा सकते, वे गुरु 'गुरु' नहीं हैं, वे स्वजन 'स्वजन' नहीं हैं, पिता 'पिता' नहीं हैं अर्थात् उनका पुत्रोत्पत्ति

विषयमें यत्न करना अनुचित है, वे जननी 'जननी' नहीं हैं अर्थात् उस जननीका गर्भ धारण कर्त्तव्य नहीं है, वे देवता 'देवता' नहीं हैं अर्थात् जो सभी देवता जीवके संसारमोचन में असमर्थ हैं, उनका मानवोंके निकट पूजा-ग्रहण अनुचित है। वे पति 'पति' नहीं हैं अर्थात् उनका पाणिग्रहण करना अनुचित है।

ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्द विग्रहः।
अनादिरादिर्गोविन्दः सर्वकारणकारणम् ॥

श्रीमन् महाप्रभुजीके विचारके निकट अन्यान्य आचार्यगणोंके विचारोंका गुरुत्व कम है। वे स्वयं भगवान् हैं, गोविन्द हैं, सर्वावतारी हैं; गोविन्दके सेवक ही सर्वोत्तम हैं।

महाप्रभुजीने कोई क्षुद्र बात नहीं कही—जिसका अवलम्बन करनेसे शोकदुःख आदि जीवको आक्रमण कर सकते हैं। उन्होंने सभी को नित्यमंगल एवं नित्यदान ही दिया है। उन्होंने इस जगतको कोई बात नहीं कही थी।

अन्यान्य आचार्योंने सेवकके सिद्ध देहमें सर्वांगद्वारा भगवानकी सेवाकी बात नहीं कही थी। श्रीनारायणके सेवक लोग सिद्ध देहमें नाभिके ऊपरके भागद्वारा उनकी सेवा करते हैं। श्रीचैतन्य महाप्रभुकी कथा अन्यान्य कथाओंके साथ तुलनापूर्वक आलोचना होनी चाहिये। जो लोग श्रीचैतन्यदेवके विचारका कीर्त्तन करते हैं, वे 'गुरुभक्त' हैं। Theistic group (आस्तिक सम्प्रदाय) के लोगोंमें कार्ष्णगण या कृष्णभक्त ही सर्वश्रेष्ठ है। महाप्रभु ने कहा है—'पहले अपने स्वरूपका परिचय प्राप्त करो।'

"के आमि केने आमाय जारे तापत्रय।
इहा नाहि जानि आमि, कैछे हित हय ॥"

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील सरस्वती ठाकुर

+-+-+-+

गुरुके क्या लक्षण हैं ?

कृपासिन्धुः सुसंपूर्णः सर्वसत्त्वोपकारकः।
निस्पृहः सर्वतः सिद्धः सर्वविद्याविशारदः।
सर्वसंशयसच्छेत्ताऽनलसो गुरुराहृतः ॥

जीवोंके प्रति अपार कृपामय, सुसम्पूर्ण अर्थात् जो स्व-स्वभाव या अपने आत्म स्वरूपमें प्रतिष्ठित रहनेके कारण जिनका कोई अभाव नहीं है; सर्वगुणविशिष्ट, सब जीवों के हितसाधनमें रत, निष्काम, सर्वप्रकारसे सिद्ध, सर्वविद्या अर्थात् ब्रह्मविद्या या भक्ति सिद्धान्तमें जो सुनिपुण एवं प्रतिष्ठित हैं; शिष्यके समस्त प्रकारके सन्देह छेदन करनेमें पूर्ण समर्थ हैं और अनलस अर्थात् हरिसेवानिष्ठ पुरुष ही 'गुरु' कहे जाने योग्य हैं।

(हरिभक्तिविलास १।३५ श्लोकधृत विष्णुस्मृति वचन)

मठीश्वर परमाराध्यतम ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशत श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान
केशव गोस्वामी महाराज की परम पुनीत आविर्भाव
तिथि-पूजाके उपलक्ष्यमें दासाधम की

प्रसूनांजलि

परम पूज्य श्रद्धेय दयानिधि दिव्य यशस्वी ।
अगणित गुण गण सिन्धु विशारद वर वर्चस्वी ॥
नेह गेह रस भरे हृदय के अत्याकर्षक ।
हरिगुण कीर्तन निरत निरन्तर हरिजन हर्षक ॥
जय जय केशव ! केशव-निजजन भक्ति दिवैया ।
कृपा करो सब व्याधि हरैया विनय सुनैया ॥
विनती बारम्बार चरण की शरण न छोड़ूँ ।
अशरण शरण ब्रजेश-प्रिया से दृष्टि न मोड़ूँ ॥
कृपा दृष्टि की वृष्टि वेग ही मोपर कीजै ।
जग प्रपंच कौं छांड़ रहूं ऐसी मति दीजै ॥
सिद्ध-नित्य-व्यक्तित्व तिहारो अतुल दिखावै ।
वैष्णवता को भाव सबन के हिये जगावै ॥
मङ्गल दायक रूप भक्ति के परम प्रचारक ।
गुरुजन पुङ्गव सिंह सकल कलि कलुष निवारक ॥
सदाचार सत नीति निपुण सद्बुद्धि विचारक ।
तारण तरण प्रबुद्ध विश्व-जन-जनम सुधारक ॥
हे केशव ! हे नाथ !! अहो करुणा के सागर ।
करिकैं हमें अनाथ गये निजधाम उजागर ॥
हम वियोग में मरें याद करि-करिकैं तुमकौं ।
जग में जावैं कहाँ, कहाँ अब पावें तुमकौं ॥

श्री गुरु कृपालेश प्रार्थी--
ओउम् प्रकाश दासाधिकारी
बी० ए०, साहित्यरत्न

परमाराध्यतम ॐ विष्णुपाद १०८ श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजकी परम पुनीत आविर्भाव-तिथिपर दीन-हीनकी

पुष्पांजलि

यस्य प्रसादाद् भगवत् प्रसादो यस्याप्रसादान्न गतिः कुतोऽपि ।
ध्यायंस्तुवंस्तस्य यशस्त्रिसन्ध्यं वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम् ॥

परमाराध्य गुरुदेव हम पर कृपा कीजिये ।
कलि-निमग्न हम दीन जनों को शरण दीजिये ॥
श्री हरिके करुणामूर्त्त जगत में प्रकट हुए तुम ।
करने भक्ति प्रचार स्वधाम अवतरित हुए तुम ॥
थे अत्यन्त निर्भीक, भक्तजन परिपालक थे ।
अशरण-शरण औ भक्तवृन्द के हितकारक थे ॥
थी अति मंगल मूर्ति, वाणी भी अतिप्रभावशाली ।
करते अज्ञान दूर, भक्तों की सब प्रकार से रखवाली ॥
भक्ति प्रज्ञान-केशव सुनाम से इस जगमें विख्यात हुए ।
करके भक्ति-प्रचार शीघ्र ही इस जग से अप्रकट हुए ॥
भक्तिविनोद-प्रभुपादके मनोभीष्ट कारी तुम ही थे एक व्यक्ति ।
भक्ति प्रचार करने-की रखते एक बड़ी अद्भुत शक्ति ॥
नहीं किसी से डरते अपितु करते तत्क्षण उसे प्रभावित ।
वैष्णव कष्ट निवारण करने रहते थे तैयार त्वरित ॥
एक बार यदि पतित व्यक्ति भी दर्शन इनका करता है ।
श्रीराधाकृष्ण भक्ति करने का अधिकारी वह बनता है ॥
किसीने मन से एक बार कह दिया यदि इसी तरह ।
मैं हूँ अब गुरुदेव तुम्हारा शरण दीजिये किसी तरह ॥
गोविन्द-निजजन होने से झट भक्ति लाभ वह करता है ।
पाकर भक्ति निरंतर हरिचरणोंमें अग्रसर होता है ॥
थे श्रीहरि प्रकाश-विग्रह और धर्म मूर्त्त अभिव्यक्ति ।
प्रचारित कर दी इस कलिमें राधाकृष्णको प्रेम भक्ति ॥
अल्पकालसे तुमने गुरुवर हरिभक्ति प्रचार किया ।
कलि मानव को शरण देकर कृष्ण भक्तिका दान दिया ॥
भक्ति-कार्य में निपुण होने से ही तुम भक्तिप्रज्ञान थे ।
सर्वश्रेष्ठ भक्ति "केशव" की, जिससे तुम विख्यात थे ॥

वर्तमान आवश्यकताकी पूर्ति गुरुवर आपने आकर की।
यथा-तथा निज भक्तोंको भक्ति कृष्णकी दान की॥
थे अति करुणाशील एवं अद्भुत प्रभावशाली मूर्त्ती।
करने भक्ति प्रचार, आये धन्य करने थे यह धरती॥
निजी विलक्षण सेवा से हरि को बश में रखते हैं।
अपने भक्तोंके हृदय कमलमें भक्ति-प्रवाहित करते हैं॥
राधा-कृष्ण युगल-तत्वोंके दर्शन आपने किये हैं।
दर्शन ही नहीं अपितु, सदैव वे रहते आपके हिये हैं।
कोई धर्म की बात अटकती, शीघ्र ही सुलझा देते थे।
भक्तवृन्द को कृष्णभक्ति की ओर प्रेरित कर देते थे॥
हे गुरुदेव हमारे अन्दर कुवासनाएं हैं भरी हुईं।
काम क्रोध और लोभ की परतें अन्तरात्मा को ढकी हुईं॥
विषयों में आसक्ति बहुत है कृष्ण भक्ति का लेश नहीं।
ज के सब अवगुण मुझमें हैं कोई एक भी शेष नहीं॥
हे गुरुदेव हमारे अन्दर काम क्रोध है भरा हुआ।
विषय-प्रीति व्यभिचार साथ ही मोह भी जमा हुआ॥
आपको पाकर अब निश्चय ही ये नहीं रहने पायेंगे।
देख आपकी कृपा वृष्टि ये तुरन्त ही भग जावेंगे॥
केवल तुम्हारे नाम-श्रवण से मेरी यह अभिलाषा है।
राधा कृष्ण प्रेम-सेवा प्राप्त करने की तुमसे आशा है॥
सुन रक्खा मैंने यह गुरुवर कृष्ण भक्तिके दाता हैं।
वैष्णव जन रखवाली करते शिशु के लिये जैसे माता हैं॥
नित्य कृष्ण-सेवारत गुरुदेव आपसे विनय करते।
हमको भी कृपा सुधासे निज, कलि भय से अभय करते॥
विषय निमग्न हम दीन जनोंको गुरुदेव शरण लीजिये।
कृष्ण सेवामें रत कर निज चरणभक्ति-का दान दीजिये॥
जगत विषयों की गन्ध हमारे पास कभी न आने पावे।
राधाकृष्ण प्रेम की धारा हृदय से नहीं जाने पावे॥
मन-वचन वैष्णव दासानुदास बनें।
प्रत्येक हमारी क्रिया ही कृष्ण सेवाके लिए बनें॥
गुरुगोविन्द की सेवा में दिन रात निरंतर प्रीति बढ़े।
भक्ति प्रचार एवं हरिचरणोंमें नित्य हमारी रुचि बढ़े॥
आपसे बल पाकर हम इस जग में भक्ति प्रचार करें।
हरि-गुरु-वैष्णव सेवाके लिये हम सर्वस्वदान करें॥

आपकी शरण लेने से जग में असम्भव कार्य नहीं ।
कृष्णभक्ति में बढ़ने के अवरोधक विघ्न कोई नहीं ॥
हे भक्ति प्रज्ञान केशव ! आपको पाकर हम धन्य हुए ।
लेकिन अब आपके अभाव में पुष्पांजलि देते विलख रहे ॥
हे गुरुदेव ! हमारी यह हृदयरूपी पुष्पांजलि लो ।
राधाकृष्ण प्रेम रस-धारा का इसमें प्रवाह कर दो ॥
हे गुरुदेव!तुम्हारी जय हो!अनन्त काल तक जय जय हो ।
जय की ही तुम मूर्ति तुम्हारी जयहो!जयहो!जयजय हो ॥

—वैष्णवदासानुदास-कृपालेशप्रार्थी,
'श्यामसुन्दर'

परमाराध्यतम १०८ श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजकी परम पुनीत आविर्भाव-तिथिके उपलक्ष्यमें दीन-हीनका भावपूर्ण पुष्पांजलि

गुरुवर केशव ! चरण युगल पर कैसे पुष्पांजली चढ़ाऊँ ।
प्रेम भावना हीन दूर अति साधन विरहित जग कहलाऊँ ॥
अधिक विकम्पित हस्ताङ्गुलियाँ जरठाई शैथिल्य धरेहूं ।
सुमन निकर उपवन अन्तर्हित मन सेवा की साध भरे हूँ ॥
निम्नोन्नत कंटकी धरा है शक्ति क्षीण जीवन की धारा ।
एक कृपा सम्बल ही गुरु का मेरा अन्तिम सुदृढ़ सहारा ॥
इससे शब्दों की पुष्पाञ्जलि चारु पत्र की डलिया में भर ।
प्रेषित करता डरता डरता जनसंकुल व्यापक उत्सव पर ॥
उसे सरस वैष्णव करुणाकर गुरु के उभय पादपद्मों पर ।
अवसरका अवलोकन करके निकट पहुंचकर शीश झुकाकर ॥
भाव भक्ति श्रद्धासे अर्पित यह कर श्रम कर ही देना ।
दीन जीव जीवन कृतार्थ कर परहित का पावन यश लेना ॥

विनीत
गुरुचरण किङ्कर
[illegible] शास्त्री
शिक्षा-सदन
महादेव घाटी, नाथद्वारा (राजस्थान)

गुरुवर केशव ! दर्शन दीजै !

गुरुवर केशव ! दर्शन दीजै !

इन प्यासे नयनों की तृष्णा दूर नाथ ! करुणा कर कीजै ।।
सजल नयन इस भारत भू की दुःख विपत्ति मिटा दो ।
भारतीय संस्कृति रखवारे धर्म ध्वजा फिर से फहरा दो ।।
अब मानव दानव गुण लेकर पशुता से सर्वोच्च बना है ।
संस्कृति धर्महीन जीवन ले अहंभाव औद्धत्य सना है ।।
अनाचार का आश्रय लेकर कलह प्रपञ्च धूलि से दूषित ।
कृष्ण नाम मन से बिसराकर काम दाम ध्वनिसे संभूषित ।।
ब्रह्मचर्य अस्तेय अहिंसा कहाँ गये जिनका न पता है ।
अपरिग्रह हो सत्य विकुण्ठित सूख गई वर भक्ति लता है ।।
किया आत्म तत्वों को आवृत ओ अनात्म तत्वों ने बलकर ।
भौतिक अञ्जन आँझ मनुज अब भ्रमित घूमता है घर-घर ।।
काम क्रोध ओ' लोभ स्वार्थ के परिजन में फल फूल रहा है ।
निज प्रभुता अज्ञान मोह की डाली डालो भूल रहा है ।।
द्वेष पाप पाखण्ड कपटका कलुष नीर नित पान कर रहा ।
अधिकारों के हेतु कलह कर अपना गौरव सिद्ध कर रहा ।।
अनुशासन की कथा दूर है हिंसा फूट प्रवाह बढ़ा है ।
न्याय घटा अन्याय केतु का भारत पर नक्षत्र चढ़ा है ।।
कुटिल नीति को अपना करके बने प्रमादी सज्जन जन भी ।
निज कार्यों की सिद्धि हेतु व्यय कर देते तन-मन-धन भी ।।
हुए सुदृढ़ परिवार विशृङ्खल वर समाज की नींव ढही है ।
निज मर्यादा त्याग मनुज ने भीख विदेशी लही है ।।
हे उद्धारक ! दया द्रवित हो भव दुखों से इसे छुड़ाओ ।
तजि विलम्ब प्रभु गौर भक्ति की अमृत माधुरी पान कराओ।।

प्रेषक :

वामरोदी कृष्णचन्द्र शास्त्री, काव्यतीर्थ, साहित्यरत्न
शिक्षासदन, महादेव घाटी, नाथद्वारा (राजस्थान)

परमाराध्यतम १०८ श्रीश्रील गुरुदेवकी परम पुनीत आविर्भाव-तिथिपर
तदीय श्रीचरणकमलोंमें दीन-हीन दासाधमकी क्षुद्रातिक्षुद्र

पुष्पाञ्जलि

परमाराध्यतम श्री श्रील गुरुदेव ! आज आपकी परमपुनीत आविर्भाव-तिथि है। इसी तिथिको धन्यातिधन्य कर आप हम-जैसे पतित जीवोंका उद्धार करने के लिए इस भौम जगत में प्रकट हुए थे। यह तिथि मुझ जैसे पामरको आपकी अलौकिक लीलाएँ, अतिमर्त्य जीवन-चरित्र एवं परम मनोहर व्यक्तित्वकी याद दिलानेके लिए आया करती है। यह दिन मेरे लिए अपने गुण-दोष विचार करने का सुयोग प्रदान करती है।

हे परमाराध्यतम श्रील गुरुदेव ! मैं यद्यपि अपनेको आपका सेवकाभिमान करता हूँ फिर भी कार्यक्षेत्रमें आपके वचन एवं आज्ञा का परिपालन नहीं कर पा रहा हूँ। यद्यपि मैंने आपका चरणाश्रय किया, किन्तु यथार्थ-रूपमें अपना काय-मन-वचन आदि सर्वस्व दे नहीं पाया। यद्यपि मैं भजन करने का भान करता हूँ, फिर भी यथार्थ भजनसे कोटि-कोटि कोसों दूर हूँ। यद्यपि आपने मुझे भजन करने की सब प्रकारकी सुविधायें दे रखी हैं, किन्तु फिर भी मैं सर्वदा विषय-चिन्तामें ही अभिनिविष्ट रहता हूँ। एवं भजन करनेका कोई प्रयास ही नहीं कर रहा हूँ। गुरु सेवकों-को मान देना या उनसे प्रीति करना तो दूर रहा, केवल उनके दोषों और गलतियोंको ही ढूंढता रहता हूँ। मुझे आपने अमृतका प्याला दिया है, किन्तु मैं अपनी मूर्खताके कारण उसे उलटा दे रहा हूँ। हे परम दया-मय गुरुदेव ! आपकी दयाकी कोई सीमा नहीं है। आपने जो मुझपर करुणा प्रकाश की है, उसके ऋणोंसे मैं अपनेको कदापि उऋण नहीं करा सकता। आप कृपा कर मुझ पामर पर सर्वदा अपनी कृपादृष्टि बनाये रखें जिससे मैं परमार्थका यथार्थ पथिक बन सकूँ और सर्वदा अपने दोषोंको एवं त्रुटियों-को समझ सकूँ। मुझमें अपनेको संशोधन करनेका कोई सामर्थ्य नहीं है। आप अपनी वीर्यवती वाणीका एवं शक्ति का संचार कर मुझ पामर का उद्धार करें।

इति
दीनहीन दासाधम
कृष्णस्वामीदास

श्रीश्रीव्यास-पूजा महामहोत्सव

विगत ५ गोविन्द, २ फाल्गुन, १५ फरवरीके दिन श्रीव्यासाभिन्न जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद १०८ श्री श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर 'प्रभुपाद' की आविर्भाव तिथि-पूजाके उपलक्ष्यमें श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके मूल मठ एवं सभी शाखा मठोंमें ३ गोविन्द, ३० माघ, १३ फरवरी शनिवार, कृष्णा तृतीयासे लेकर ५ गोविन्द, २ फाल्गुन, १५ फरवरी, सोमवार, कृष्णा पञ्चमी तक तीन दिन श्रीश्रीव्यास-पूजाका अनुष्ठान बड़े समारोहके साथ सम्पन्न हुआ है।

प्रथम दिन कृष्णा तृतीया शनिवारको समितिके सभी मठोंमें श्रीश्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुरके अन्तरङ्ग प्रिय पार्षदवर, श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके प्रतिष्ठाता, अस्मदीय श्रीश्रील गुरुपादपद्म नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद १०८ श्रीश्रीमद् भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजकी शुभाविर्भाव-तिथिके उपलक्ष्यमें श्रीहरिसंकीर्त्तनके माध्यमसे श्रीश्रीव्यास-पूजा एवं तदंगीभूत श्रीकृष्ण-पञ्चक, मध्वादि-पञ्चक, आचार्य-पञ्चक, सनकादि-पञ्चक, श्रीगुरु-पञ्चक एवं तत्व-पञ्चककी पूजा आदिके पश्चात् उपस्थित सेवकोंने श्रीश्रीगुरुपादपद्मके अशोक, अभय एवं श्रीकृष्णप्रेमद चरणकमलोंमें पुष्पांजलि अर्पित की। शामको विशेष सभामें श्रीव्यासपूजाका महत्व, श्री श्रीव्यासदेवका दान-वैशिष्ट्य आदि विषयोंपर आलोचना एवं विभिन्न सेवकोंद्वारा रचित पुष्पांजलियाँ पाठ, परमाराध्यतम श्री श्रीगुरुदेवकी अतिमर्त्य जीवनी एवं अप्राकृत शिक्षाओंपर आलोचना की गई। दूसरे दिन सबेरे-शाम श्रीगुरुतत्वपर विशद आलोचना एवं श्रीचैतन्य-भागवतका पाठ हुआ। तीसरे दिन जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रीश्रील १०८ प्रभुपादजीकी आविर्भाव-तिथि श्रीकृष्ण-पञ्चमीके दिन उनके चरणकमलोंमें पुष्पांजलि अर्पणके पश्चात् सबेरे-शाम विशेष सभामें श्रील प्रभुपादजीके अतिमर्त्य जीवन-चरित्र एवं उनकी अप्राकृत शिक्षाओंके सम्बन्धमें विभिन्न वक्ताओंने भाषण दिए।

यह उत्सव श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें तथा श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, नवद्वीपमें समितिके वर्त्तमान आचार्य परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद् भक्तिवेदान्त वामन महाराजके आनुगत्यमें विशेष उत्साह और यत्नके साथ मनाया गया है।

—निजस्व संवाददाता

श्रीचैतन्य महाप्रभुके स्वयं-भगवत्ता प्रतिपादक कतिपय शास्त्रीय प्रमाण

(गताङ्कसे आगे)

द्वापरीयैर्जनैर्विष्णुः पाञ्चरात्रैस्तु केवलैः ।
कलौ तु नाममात्रेण पूज्यते भगवान् हरिः॥६९॥
(श्रीमध्वाचार्यकृत मुण्डकोपनिषद्भाष्ये नारायणसंहितावचनम्)

द्वापरयुगके जन तो केवल पञ्चरात्रोक्त विधिके अनुसार भगवान् का पूजन करते हैं, परन्तु कलियुगमें तो केवल हरिनाममात्रसे ही भगवान्का पूजन तत्कालीन जन करते हैं।

एवमङ्ग विधिं कृत्वा मंत्री ध्यायेद्यथाच्युतम् ।
कलायकुसुमश्यामं द्रुतहेमनिभं तु वा ॥७०॥
(तंत्रे च प्रोक्तम्)

कोई ऋषि ध्याताजनके लिये ध्यान-विधिका वर्णन करते हुए कहते हैं कि—हे प्रिय भक्त ! विधिपूर्वक गुरुदेवसे मंत्र प्राप्त करने पर मंत्र जापक जनको प्रभुके कलायकुसुमके समान श्यामरूपका ध्यान करना चाहिये अथवा पिघले हुए सुवर्णके समान रूपका ध्यान करना चाहिये । तात्पर्य—अलसीके पुष्पके समान रूपवाले तो श्रीरामकृष्णादि रूप हैं, परन्तु द्रुतहेमसदृश तो श्रीगौरांगदेव ही हैं। अतः उनका भी ध्यान यथाधिकार वर्णित है।

सन्धौ कृष्णो विभुः पश्चाद् देवक्यां वसुदेवतः ।
कलौ पुरन्दरात् शच्यां गौररूपो विभुः स्मृतः
॥७१॥

अवतारमिमं कृत्वा जीवनिस्तारहेतुना ।
कलौ मायापुरीं गत्वा भविष्यामि शचीसुतः ॥
॥७२॥ (ऊर्ध्वाम्नायतंत्रे)

निज भावुक भक्तोंकी इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले सर्वव्यापक सर्वान्तरात्मा भगवान् कृष्ण द्वापरकी पश्चिम सन्धिमें तो श्रीवसुदेवजी द्वारा श्रीदेवकीमें प्रकट हुए। तत्पश्चात् वे ही प्रभु कलिकी पूर्व-सन्ध्यामें पंडित श्रीजगन्नाथ मिश्र द्वारा श्रीशचीदेवीमें प्रकट हो श्रीगौरांगरूपसे कहे जाते हैं। वे ही प्रभु स्वयं कहते हैं कि कलियुगमें इस "गौर" अवतारको लेकर जीवोंके कल्याणके लिये मायापुरीमें जाकर श्रीशचीसुतरूपसे प्रकट होऊँगा।

क्वचित् सापि कृष्णमाह शृणु मद्वचनं प्रिय ।
भवता च सहैकात्म्यमिच्छामि भवितुं प्रभो॥७३॥
मम भावान्वितं रूपं हृदयाह्लादकारणम् ।
परस्पराङ्गमध्यस्थं क्रीडाकौतुकमङ्गलम् ॥७४॥
परस्परस्वभावाढ्यं रूपमेकं प्रदर्शय ।
श्रुत्वा तु प्रेयसीवाक्यं परमप्रीतिसूचकम् ॥७५॥
स्वेच्छयासीद् यथा पूर्वमुत्साहेन जगद्गुरुः ।
प्रेमालिङ्गनयोगेन ह्यचिन्त्यशक्तियोगतः ॥७६॥
राधाभावकान्तियुक्तां मूर्तिमेकां प्रकाशयन् ।
स्वप्ने तु दर्शयामास राधिकायै स्वयं प्रभुः ॥
॥७७॥ (कापिलतंत्रे)

एक दिन श्रीराधिकाजी श्रीकृष्णचन्द्रसे बोलीं—हे प्राणप्रिय प्रभो ! मैं आपके श्री विग्रहके साथ एकीभाव होना चाहती हूँ । अतः प्रभो ! वह दोनों का संमिश्रित रूप ऐसा दिखाओ जो परस्पराङ्ग मध्यस्थ हो, क्रीड़ा कौतुकका मंगलदायक हो, परस्पर दोनोंके भावसे युक्त हो । प्रियाजीकी परम प्रीति-सूचक ऐसी वाणी सुनकर जगद्गुरु भगवान् श्रीकृष्णने उत्साहपूर्वक अपनी इच्छाके अनुसार अचिन्त्य शक्तिके द्वारा प्रेमालिङ्गन योगसे श्रीराधाजीके भाव एवं कान्तिसे युक्त एक ही मूर्तिको प्रकाशितकर श्रीराधिकाजीको स्वप्नमें दर्शन कराया । स्वप्नमें प्रथम दर्शन करानेका तात्पर्य यह है कि—यदि आपको यह राधाभावकान्ति-मिलित वपु अच्छा लगे तो मैं भक्तोंके सामने प्रकट करूँ ।

ब्रह्मण्यः सर्वधर्मज्ञः शान्तो दान्तो गतक्लमः ।
श्रीनिवासः सदानन्दी विश्वमूर्तिर्महाप्रभुः ॥७८॥
(संमोहनतंत्रे)

ये सब नाम श्रीचैतन्य महाप्रभुमें साङ्गोपाङ्ग संघटित होते हैं । यथा—कुष्ठरोगसे पीड़ित ब्राह्मणको आलिङ्गन प्रदान मात्रसे सुवर्णमय देह बना देनेसे एवं यज्ञोपवीत तोड़कर शाप देनेवाले विप्रका शाप सहर्ष स्वीकार कर दिखानेसे ब्रह्मण्यदेव प्रसिद्ध ही हैं । पंडित श्रीनिवास एवं सदानन्द आपके पार्षद प्रसिद्ध ही हैं, अतः आपका नाम श्रीनिवास एवं सदानन्दी है । विश्वरूप आपके अग्रज होनेसे विश्वमूर्ति भी आपका नाम है । महाप्रभु शब्द तो यौगिक होने पर भी आपमें ही प्राय रूढ़ है । सर्वधर्मज्ञ आदि नाम तो स्पष्ट ही आपमें चरितार्थ हैं ।

अहं पूर्णो भविष्यामि युगसन्धौ विशेषतः ।
मायापुरे नवद्वीपे वारमेकं शचीसुतः ॥७९॥
(कृष्णयामले श्रीगोकुलनाथवचनम्)

मैं श्रीमायापुर-नवद्वीपधाममें कलियुगकी प्रथम सन्धिमें एकबार परिपूर्णरूपसे प्रकट होऊँगा । यहाँ पर "पूर्ण" "वारमेक" का यह तात्पर्य है—जिस द्वापरकी सन्धिमें भगवान् कृष्णचन्द्रका परिपूर्णतम अवतार होता है उसी कलियुगकी प्रथम सन्धिमें श्रीगौरांगदेव का परिपूर्णावतार होता है ।

अथवाहं धराधाम्नि भूत्वा मद्भक्तरूपधृक् ।
मायायां च भविष्यामि कलौ संकीर्तनागमे ॥८०॥
(ब्रह्मयामले)

कलिकालमें संकीर्तनके आरम्भके समय मैं भूतल पर अपने प्रिय भक्तोंका सा वेष बनाकर श्रीमायापुरमें अवतीर्ण होऊँगा ।

गौरांगं गौरदीप्तांगं पठेत् स्तोत्रं कृताञ्जलिः ।
नन्दगोपसुतं चैव नमस्यामि गदाग्रजम् ॥८१॥
(ब्रह्मयामले चैतन्यकल्पे)

सुवर्णमय देदीप्यमान गौर अंगवाले श्रीगौरांगदेवके स्तोत्रका पाठ हाथ जोड़कर करना चाहिये । मैं तो श्रीनन्दजूके लाला गदाग्रजको भी प्रतिदिन नमस्कार करता हूँ ।

कलौ प्रथमसन्ध्यायां हरिनामप्रदायकः ।
भविष्यति नवद्वीपे शचीगर्भे जनार्दनः ॥८२॥
जीवनिस्तारणार्थाय नामविस्तारणाय च ।
यो हि कृष्णः स चैतन्यो मनसा भाति सर्वदा
॥८३॥ (ब्रह्मयामले उमामहेश्वर संवादे)

श्रीमहादेवजी पार्वतीसे बोले—कलिकी प्रथम संध्यामें श्रीहरिनाम प्रदाता श्रीजनार्दन

भगवान् पतित जीवोंका उद्धार करनेके लिये एवं निज श्रीहरिनाम का संचार करनेके लिए श्रीनवद्वीपधाममें श्रीशचीमाताके गर्भसे प्रकट होंगे। हे पार्वति ! मुझे तो अपने मनसे जो श्रीकृष्ण हैं, वे ही श्रीकृष्णचैतन्य हैं, ऐसी सदा प्रतीति होती रहती है।

भविष्यामि च चैतन्यः कलौ संकीर्तनागमे।
हरिनामप्रदानेन लोकान्निस्तारयाम्यहम् ।८४।
(ब्रह्मयामले श्रीकृष्णवाक्यम्)

श्रीकृष्णचन्द्र स्वयं कहते हैं कि—मैं कलियुगमें संकीर्तनके आरम्भ कालमें श्रीचैतन्यरूप से प्रकट होऊँगा। इस अवतारमें श्रीहरिनाम का दान कर सर्वसाधारण जीवोंका उद्धार कर दूँगा। इस श्लोकमें 'निस्तारयामि' यह वर्तमान काल की क्रिया "वर्तमान सामीप्ये वर्तमानवद्वा" इस सूत्रसे श्रीकृष्णवतारानंतर भावी समीपवर्ति अवतारकी सूचिका भविष्यदर्थमें है।

गङ्गायाः दक्षिणे भागे नवद्वीपे मनोरमे।
कलिपापः-विनाशाय शचीगर्भे सनातनि ।८५।
जनिष्यति प्रिये, मिश्रपुरन्दरगृहे स्वयम्।
फाल्गुने पौर्णमास्याञ्च निशायां गौरविग्रहः ।८६।
(विश्वसार तंत्रे)

हे प्रिये ! गंगाके दक्षिण भागमें मनोरम नवद्वीप धाममें भगवान श्रीकृष्ण कलियुगके पापोंका विनाश करनेके लिए फाल्गुनी पूर्णिमा की रातमें मिश्रपुरन्दर—जगन्नाथ मिश्रके गृहमें श्रीशचीदेवीके गर्भसे गौर रूपमें आविर्भूत होंगे।

जम्बुद्वीपे कलौ घोरे मायापुरे द्विजालये।
जनित्वा पार्षदैः सार्द्धं कीर्तनं प्रकटिष्यति ।८७।
(कपिल-तंत्रे)

घोर कलियुगमें जम्बुद्वीपके अन्तर्गत मायापुरमें उत्तम ब्राह्मणके गृहमें जन्म ग्रहण करके भगवान अपने पार्षदोंके साथ कीर्त्तन करेंगे।

ततः काले च संप्राप्ते कलौ कोऽपि महानिधिः।
हरिनाम प्रकाशाय गंगातीरे जनिष्यति ।८८।
(कुलार्णव-तन्त्रे)

अनन्तर कलियुगके प्रारम्भमें हरिनामका प्रचार करनेके लिए गंगातट पर कोई सम्पूर्ण सद्गुणोंकी निधि जन्म ग्रहण करेंगे।

भक्तियोगप्रकाशाय लोकस्यानुग्रहाय च।
संन्यासाश्रममाश्रित्य कृष्णचैतन्यरूपधृक् ।८९।
(जैमिनी भारते)

भक्तियोगका प्रकाश करनेके लिए तथा जीवोंपर दया करनेके लिए मैं संन्यास आश्रम ग्रहण करके कृष्णचैतन्य नाम धारण करने वाला होऊँगा।

गौरी श्रीराधिका देवी हरिः कृष्णः प्रकीर्त्तितः।
एकत्वाच्च तयोः साक्षादिति गौरहरिं विदुः ।९०।
(अनन्त संहितायाम्)

क्योंकि श्रीमती राधिका देवी ही 'गौरी' तथा कृष्ण ही 'हरि' नामसे प्रसिद्ध हैं, इसलिए उन दोनोंके एकताप्राप्त साक्षात् विग्रह 'गौरहरि' कहलाये।

नवद्वीपे च स कृष्ण आदाय हृदये स्वयं।
गजेन्द्रगमनां राधां सदा रमयते मुदा ।९१।
नवद्वीपे तु ताः सख्यो भक्तरूपधराः प्रिये।
एकाङ्गं श्रीगौरहरिं सेवन्ते सततं मुदा ।९२।
यः एव राधिकाकृष्णः स एव गौरविग्रहः।
यच्च वृन्दावनं देवि ! नवद्वीपञ्च तत् शुभम् ।९३।

वृन्दावने नवद्वीपे भेदबुद्धिश्च यो नरः।
तमेव राधिकाकृष्णे श्रीगौरांगे परात्मनि ।९४।
मच्छूलपातनिर्भिन्नदेहः सोऽपि नराधमः।
पच्यते नरके घोरे यावदाहूतसंप्लवम् ।९५।
(अनन्त-संहितायाम्)

नवद्वीपमें भी वही कृष्ण स्वयं गजेन्द्र-गामिनी श्रीराधिकाको वक्षःस्थलमें धारण कर आनन्द दान कर रहे हैं। अहो शिवे ! ललिता आदि जो-जो सखियाँ वृन्दावनमें अपना रूप धारण करके श्रीश्रीराधा-कृष्णकी सेवा करती हैं, नवद्वीपमें वे सभी सखियाँ भक्तरूप धारण करके आनन्दपूर्वक राधाकृष्णमिलित तनु श्रीगौरसुन्दरकी आराधना करती हैं। हे देवि ! श्रीराधा-कृष्णकी युगल जोड़ीने ही गौररूप धारण किया है और जो वृन्दावनके नामसे प्रसिद्ध हैं, उन्हींको नव वृन्दावन–नव-द्वीप जानो।

जो व्यक्ति वृन्दावन और नवद्वीपमें तथा राधाकृष्ण और परमात्म स्वरूप श्रीगौराङ्ग देवमें भेदबुद्धि करता है, वह नराधम मेरे शूल द्वारा छिन्न-भिन्न होकर प्रलय काल तक घोर नरककी यातना भोग करता है।

इति मत्वा कृपासिन्धुरंशेन कृपया हरिः।
प्रसन्नो भक्तरूपेण कलावतरिष्यति ।९६।
गौरांगो नादगंभीरः स्वनामामृतलालसः।
दयालुः कीर्तनग्राही भविष्यति शचीसुतः ।९७।
मत्वा तन्मयमात्मानं पठन् द्व्यक्षरमुच्चकैः।
गतत्रपो मदोन्मत्तगजवत् विहरिष्यति ।९८।
भुवं प्राप्ते तु गोविन्दे चैतन्याख्या भविष्यति।
अंशेन तत्र यास्यन्ति तत्र तत्पूर्वपार्षदाः।
पृथक् पृथक नामधेयाः प्रायः पुरुषमूर्तयः ।९९।
(कृष्णयामले)

भावार्थ—देवताओंकी ऐसी प्रार्थना एवं श्रीराधिकाजीकी अपने साथ एकाकार होने की प्रार्थना मानकर कृपासिन्धु श्रीहरि प्रसन्न होकर अपने पार्षदों सहित कलियुगमें भक्त-रूपसे अवतार लेंगे। उस समय आपका श्रीविग्रह गौरवर्ण का होगा। नाद भी गंभीर होगा। स्वनामामृतपान की लालसा प्रतिक्षण प्रगट होती रहेगी, अतः दयालु श्रीहरि शची-सुत होकर अपने भक्तोंके साथ नामसंकीर्तन करते कराते रहेंगे। नाम नामीमें भेद न होने के कारण अपनेको नाममय मानकर अपने दो अक्षरवाले 'हरि' नामको उच्च स्वरसे 'हरि बोल' 'हरि बोल' इस प्रकार लाज रहित हो पुकारते हुए मदमत्त हाथी की भाँति निज भक्तगणोंमें विहार करेंगे। जिस समय पुराण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीगोविन्द भूमि पर अव-तीर्ण होंगे, तब उनका नाम 'श्रीचैतन्यदेव' रूपसे प्रसिद्ध होगा और उनके साथ ही उनके पूर्व पार्षद भी अपने-अपने अंशसे पधारेंगे। उनके नाम भी पूर्व की अपेक्षा भिन्न-भिन्न ही होंगे। वे सभी प्रायः पुरुषाकार मूर्तिमें ही प्रकट होंगे।

कृष्णचैतन्यनाम्ना ये कीर्तयंति सकृन्नराः।
नानापराधमुक्तास्ते पुनन्ति सकलं जगत् ।१००।
(विष्णुयामले)

जो जन एकबार भी प्रेमसे 'श्रीकृष्ण-चैतन्य' नाम ग्रहणपूर्वक संकीर्तन करते हैं, वे स्वतः अनेक प्रकारके अपराधोंसे मुक्त होकर जगत् को भी पवित्र कर देते हैं।

अन्यावताराः बहवः सर्वे साधारणाः मताः।
कलौ कृष्णावतारस्तु गूढः संन्यासवेषधृक् ।१०१
(जैमिनि भारते)

प्रभु के अन्य बहुतसे अवतार तो प्रायः साधारणतः (सब शास्त्रोंमें स्पष्टरूपसे) माने गये हैं, परन्तु कलियुगमें श्रीकृष्णावतार तो संन्यासवेष धारण करनेवाला गुप्तरूपसे माना गया है।

कृष्णचैतन्येति नाम मुख्यात्मुख्यतमं प्रभोः।
हेलया सकृदुच्चार्य सर्वनामफलं लभेत् ।१०२।
(ब्रह्मरहस्ये)

प्रभुका 'श्रीकृष्णचैतन्य' यह नाम मुख्यतम माना गया है। कोई अनायास ही लीला-खेलापूर्वक एकबार भी इस नामका उच्चारण कर लेने से सभी नामोंके उच्चारणका फल प्राप्त कर लेता है। तात्पर्य—सब अवतारों की अपेक्षा कुछ तारतम्य विशेषसे जैसे "एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्" इस उक्तिके अनुसार भगवान् श्रीकृष्णको सभी अवतारोंका मूल अवतारी स्वयं भगवान माना जाता है, उसी प्रकार "राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे। सहस्रनामतत्तुल्यं राम-नाम वरानने ॥ सहस्रनाम्नां पुण्यानां त्रिरावृत्त्या तु यत्फलम्। एकावृत्त्या तु कृष्णस्य नामैकं तत्प्रयच्छति ॥" इस शास्त्रोक्तिके अनुसार कृष्ण नाम भी अन्य भगवन्नामोंकी अपेक्षा तारतम्य भेदसे किंचिद् वैशिष्ट्य धारण किये रहता है। अतः श्रीकृष्णचन्द्र ही श्रीकृष्ण-चैतन्यके रूपमें आविर्भूत होनेसे "श्रीकृष्ण चैतन्य" नामकी भी अन्यापेक्षा विशेषता वर्णित हुई।

कलेः प्रथमसंध्यायां गौरांगोऽसौ महीतले।
भागीरथीतटे रम्ये भविष्यति सनातनः ॥१०३॥
(योग-वाशिष्ठे)

कलिकी प्रथम सन्ध्यामें ये ही श्रीहरि भागीरथीके परम रमणीय तटपर भूतलमें गौरांग रूपसे अवतीर्ण होंगे। "सनातनः —अस्यास्तीति विग्रह"—के अनुसार "अर्शाद्यच्" करके अच् प्रत्ययान्त होनेसे श्रीसनातन गोस्वामीके अवतार की भी सूचना होती है।

अप्यगण्यमहापुण्यमनन्यशरणं हरेः।
अनुपासितचैतन्यमधन्यं मन्यते मतिः ॥१०४॥
(चैतन्यचन्द्रामृते)

जो जन अगणित महापुण्यशाली है एवं श्रीहरिके अनन्य शरणागत भी है, परन्तु यदि उसने श्रीचैतन्यदेवकी उपासना नहीं की, अथवा उनके द्वारा सिद्धान्तित प्रेमलक्षणा भक्तिके प्रकारका अनुशीलन नहीं किया तो मेरी मति तो अभी उसे अधन्य ही मानती है। यह श्रीप्रबोधानन्द सरस्वतीपादकी निष्ठाकी पराकाष्ठा है।

सुवर्णवर्णो हेमांगो वरांगश्चन्दनांगदी।
संन्यासकृच्छमः शान्तो निष्ठा शान्तिः परायणम् ॥१०५॥
(महाभारतीय अनुशासनपर्व दानधर्मपर्व, (१४८ अ० विष्णुसहस्रनामस्तोत्रे)

कालान्नष्टं भक्तियोगं निजं यः
प्रादुष्कर्तुं कृष्णचैतन्यनामाः।
आविर्भूतस्य पादारविन्दे
गाढं गाढं लीयतां चित्तभृंगः ॥१०६॥
(चैतन्यचरितामृते २।६।२५५)
(चैतन्यचन्द्रोदये ६।४५)

कालके प्रभावसे अपने भक्तियोगको विनष्टप्राय देख कर जो 'कृष्णचैतन्य' नामक पुरुष पुनः उसका प्रचार करनेके लिए आवि-

भूत हुए हैं, उनके श्रीचरणकमलोंमें मेरा चित्तरूपी भ्रमर निमज्जित होवे ।

राधाकृष्णप्रणयविकृतिर्ह्लादिनीशक्तिरस्मा-
देकात्मनावपि भुवि पुरा देहभेदं गतौ तौ ।
चैतन्याख्यं प्रकटमधुना तद्द्वयं चैक्यमाप्तं
राधाभावद्युतिसुवलितं नौमि
कृष्णस्वरूपम् ॥१०७॥
(चैतन्यचरितामृते १।१।५)

राधाकृष्णकी प्रणय-विकृतिरूप ह्लादिनी-शक्तिद्वारा राधा-कृष्ण स्वरूपतः एकात्म होकर भी विलास-तत्त्वकी नित्यता हेतु राधा-कृष्ण नित्यकाल ही दोनों ही स्वरूपोंमें विराजमान हैं, वे ही दोनों तत्त्व इस समय एक स्वरूपमें चैतन्य-तत्त्वके रूपमें प्रकटित हैं। अतएव राधा भाव और कान्तिद्वारा सुवलित उन कृष्णरूप गौरसुन्दरको प्रणाम करता हूँ ।

अपारं कस्यापि प्रणयिजनवृन्दस्य कुतुकी
रसोस्तोमं हृत्वा मधुरमुपभोक्तुं कमपि यः ।
रुचिं स्वामावव्रे द्युतिमिह तदीयां प्रकटयन्
स देवश्चैतन्याकृतिरतितरां नः कृपयतु ॥१०८॥
(स्तवमालायाम्)

जो कौतुकी कृष्ण प्रणयिजनोंके रससमूह-का आस्वादन करते हुए किसी एक असीम मधुर रसका भोग करने की अभिलाषासे अपनी अंगकान्तिको छिपाकर श्रीराधाकी अंगकान्तिको ग्रहण कर चैतन्यरूपमें प्रकट हुए हैं, वे हमें विशेषरूपसे कृपा करें ।

स्वदयितनिज भावं यो विभाव्य स्वभावात्
सुमधुरमवतीर्णो भक्तरूपेण लोभात् ।
जयति कनकधामा कृष्णचैतन्यनामा
हरिरिह यतिवेशः श्रीशचीसुनुरेषः ॥१०९॥
(बृहद्भागवतामृते १।१।३)

स्वयं भगवान श्रीकृष्णने यह विवेचन करके निश्चय किया है कि भक्तोंके प्रति मेरा जो प्रेम है, उसकी अपेक्षा भक्तोंका मेरे प्रति जो प्रेम है, वह विशेष माधुर्ययुक्त है। इस-लिए उस भक्त-प्रेमके आस्वादन करनेके लोभसे उन्होंने भक्तरूपसे संन्यासी-वेशमें कनक-कान्तिके समान दिव्य मंगल-विग्रह धारण किया है, जिनका नाम श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु है। उन शचीनन्दन गौर-हरिकी सदा जय हो ।

अन्तः कृष्णं बहिर्गौरं दर्शितांगादिवैभवम् ।
कलौ संकीर्त्तनाद्यैः स्मः कृष्णचैत-
न्यमाश्रिताः ॥११०॥
(भागवत-सन्दर्भे)

अङ्ग-उपाङ्ग आदि वैभवोंके साथ प्रकटित, भीतरमें साक्षात् कृष्ण बाहरमें गौर स्वरूप कृष्णचैतन्यके कलियुगमें संकीर्तन आदि अङ्गोंके द्वारा आश्रय करता हूँ ।

अन्तः कृष्णो बहिर्गौरः सांगोपांगास्त्रपार्षदः ।
शचीगर्भे समाप्नुयां मायामानुषकर्मकृत् ॥१११॥
(स्कन्दपुराणे)

राधांगशश्वदुपगूहनतस्तदाप्त
धर्मद्वयेन तनुचित्तधृतेन देवः ।
गौरो दयानिधिरभूदयि नन्दसूनो
तन्मे मनोरथलतां सफलीकुरुत्वम् ॥११२॥
(श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती, संकल्पकल्पद्रुमे,९५)

हे देव नन्दनन्दन ! आप निरन्तर श्रीमती राधिकाके श्रीअंगके आलिंगनके वशीभूत

होकर उनके तनु और चित्त—इन दोनों धर्मोंको अंगीकार करके श्रीगौर दयानिधि हो रहे हैं। तात्पर्य यह कि श्रीराधिकाके तनुधर्म—गौरवर्ण को धारण कर 'गौर' तथा चित्तधर्म—दयाको धारणकर दयानिधि अर्थात् दोनोंको धारण कर गौर दयानिधि हुए हैं। अतः मेरी मनोरथ लताको सफल कीजिए।

पितामाता गुरुगण आगे अवतरि।
राधिकार भावकान्ति अंगीकार करि॥
नवद्वीपे शचीगर्भ-शुद्धदुग्धसिन्धु।
ताहाते प्रकट हैला कृष्ण पूर्ण इन्दु॥११३॥

(चैतन्यचरितामृते १।४।२७१-७२)

माता पिता एवं अन्याय गुरुजनोंको पहले ही अवतरित करा कर पीछे स्वयं श्रीमती राधिकाके भाव और कान्तिको अङ्गीकार करके कृष्ण रूपी पूर्णचन्द्र श्रीधाम नवद्वीपके श्रीशची-माताके गर्भरूपी शुद्ध दुग्धके समुद्रसे प्रकट हुए।

राधिकार भावकान्ति अंगीकार बिने।
सेइ तिन सुख कभु नहे आस्वादने॥
राधाभाव अंगीकरि धरि तार वर्ण।
तिन सुख आस्वादिते हब अवतीर्ण॥११४॥

(चैतन्यचरितामृते १।४।२६७-६८)

श्रीकृष्ण मन-ही-मन विचार कर रहे हैं कि श्रीमती राधिकाके भाव एवं कान्तिको अङ्गीकार किये बिना उक्त तीनों सुखों का आस्वादन संभव नहीं है। अतएव श्रीराधाके भावको अंगीकार करके तथा श्रीमती राधिकाकी अंगकान्ति को धारण करके उक्त तीनों सुखोंका आस्वादन करने के लिए अवतीर्ण होऊँगा।

युगधर्म प्रवर्त्तामु नामसंकीर्तन।
चारि भाव-भक्ति दिया नाचामु भुवन॥
युगधर्म-प्रवर्तन हय अंश हैते।
आमा बिना अन्ये नारे व्रजप्रेम दिते॥
ताहाते आपन भक्तगण करि संगे।
पृथिवीते अवतरि करिमु नाना रंगे॥
एत भावि कलिकाले प्रथम संध्याय।
अवतीर्ण हैला कृष्ण आपनि नदीयाय॥११३॥

(श्रीचैतन्यचरितामृते १।३।१९,२६,२८,२९)

युगधर्म हरिनाम-संकीर्तनका प्रवर्तन करूँगा तथा दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर—इस चार प्रकारकी भाव भक्तिका दान कर भुवनको नचाऊँगा। युग-धर्मका प्रवर्तन तो मेरे अंशावतारों द्वारा भी हो जाता है, परन्तु मेरे अतिरिक्त अन्य कोई भी अवतार व्रजप्रेम का दान नहीं कर सकते। अतएव व्रज-प्रेमका दान करनेके लिए अपने भक्तवृन्दके सहित पृथ्वीपर अवतरित होकर विविध प्रकारकी चमत्कार-लीलाएँ करूँगा।—ऐसा सोचकर स्वयं व्रजेन्द्रनन्दन श्यामसुन्दर कलियुगके प्रथम संध्यामें श्रीनवद्वीप धाममें स्वयं अवतीर्ण हुए।

दैर्ध्य विस्तारे जेइ आपनार हात।
चारि हस्त हय 'महापुरुष' विख्यात॥
'न्यग्रोधपरिमण्डल' हय तांर नाम।
न्यग्रोधपरिमण्डल-तनु चैतन्य गुणधाम।११६।

(श्रीचैतन्यचरितामृते १।३।४२,४३)

जो व्यक्ति अपने हाथसे चार हाथ लम्बा होता है, वह प्रसिद्ध महापुरुष होता है। इस लक्षणको 'न्यग्रोध-परिमण्डल' कहते हैं।

श्रीचैतन्य महाप्रभु भी अपने हाथसे चार हाथ लम्बे—न्यग्रोधपरिमण्डल-लक्षणसे युक्त थे।

एइ कृष्ण-महाप्रेमेर सात्त्विक विकार ॥
'सुद्दीप्त सात्त्विक' एइ नाम जे 'प्रणय'।
नित्यसिद्ध भक्ते से 'सुद्दीप्त भाव' हय ॥
'अधिरूढ़ महाभाव' जाँर ताँर ए विकार।
मनुष्येर देहे देखि बड़ चमत्कार ॥११७॥
(श्रीचैतन्यचरितामृते २।६।११-१३)

पुरीमें श्रीजगन्नाथजीके दर्शनोंसे प्रेमसे मूर्च्छित श्रीचैतन्य महाप्रभुके अङ्गोंमें महाप्रेमके दुर्लभ सात्त्विक विकारोंको लक्ष्य कर श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यजी आश्चर्यचकित होकर विचारने लगे—अहो ! इस व्यक्तिके अङ्गोंमें कृष्ण-प्रेमकी सर्वोच्च दशामें प्रकट होनेवाले अत्यन्त चमत्कारपूर्ण सात्त्विक विकार-समूह परिलक्षित हो रहे हैं। ये विकार-समूह तो नित्यसिद्ध भक्तोंके लिए भी दुर्लभ हैं; क्योंकि नित्यसिद्ध भक्तोंमें अधिक से अधिक प्रणय-नामक अवस्थामें सुद्दीप्त सात्त्विक भाव तक ही उदित होते हैं। परन्तु इस मनुष्यके अङ्गोंमें वे सब अत्यन्त दुर्लभ सात्त्विक विकार-समूह प्रकट हो रहे हैं, जो किसी अधिरूढ़ महाभाववालेमें ही संभव हैं। और अधिरूढ़ महाभाव तो एकमात्र व्रजगोप रमणियोंमें उदित होते हैं। अतएव वैसे अति दुर्लभ अधिरूढ़ महाभावावस्थाके विकार-समूह इस मनुष्यके अंगोंमें दीख रहे हैं। तब यह मनुष्य कौन है ?

श्रीचैतन्यचरितामृते—

नन्दसुत बलि जाँरे भागवते गाइ।
सेई कृष्ण अवतीर्ण चैतन्यगोसांइ ॥११८॥
(आदि २।९)

चैतन्यगोसांइर एइ तत्व निरूपण।
स्वयं भगवान कृष्ण व्रजेन्द्रनन्दन ॥१२०॥
(आ० २।१२०)

श्रीचैतन्य सेइ कृष्ण नित्यानन्द राम।
नित्यानन्द पूर्ण करे चैतन्येर काम ॥१२०॥
(आ० ५।१५६)

सेई कृष्ण अवतीर्ण चैतन्य ईश्वर।
अतएव आर सब ताँहार किंकर ॥१२१॥
(आ० ६।८२)

पहिले देखिलुँ तोमार संन्यासी-स्वरूप।
एव तोमा देखि मुञि श्याम-गोपरूप ॥
तोमार सम्मुखे देखि कांचन पंचालिका।
ताँर गौरकान्त्ये तोमार सर्व अङ्ग ढाका ॥
ताहाते-प्रकट देखि स-बंशी वदन।
नाना भावे चंचल ताहे कमलनयन ॥
तबे हासि, ताँरे प्रभु देखाइल स्वरूप।
'रसराज' 'महाभाव'—दुई एक रूप ॥१२२॥
(मध्य ८।२६७-२६९,२८१)

(श्री) नित्यानन्द कृष्णचैतन्यकी भक्ति दशों दिशि बिस्तरी ॥
गौड़देश पाखण्ड मेटि कियो भजन परायन।
करुणासिन्धु कृतज्ञ भये अगतिन गतिदायन ॥
दशधा रस आक्रान्त महत जन चरण उपासे।
नाम लेत निहि पाप दुरित तिहि नरके नाशे ॥
अवतार विदित पूरब मही उभै महत् वेदी धरी।
(श्री) नित्यानन्द कृष्णचैतन्य की भक्ति दशों दिशि बिस्तरी ॥१२३॥

(नाभाजी कृत भक्तमाल)

(क्रमशः)